महिला सशक्तिकरण की दिशा में

* * * * * * *

----लीना मेहेंदले

अपनी विद्यार्थी अवस्था के दिनों में मैं इसे सौभाग्य मानती थी कि मेरा जन्म ऐसे देश में हुआ है जो स्वतंत्र हैं और जहाँ पढाई पर कोई रोक नहीं है। मुझे खुशी है कि तब या आज भी अपने महिला होनेकी बात पर कुछ विचार करने की आवश्यकता मुझे नहीं जान पड़ी ।

कई वर्षों पश्चात् जब मैंने महसूस किया शिक्षा पाना और बराबरी का हक पाना कितना आनंददायी हो सकता है तब से भारतीय संविधान के प्रति मेरी आस्था बढ़ी है क्योंकि हमारा संविधान हर नागरिक को समानता का हक देता है । किसी भी नागरिक के साथ धर्म, जाति, वंश लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव या पक्षपात नहीं किया जा सकता । मेरे विचार में सशक्तिकरण की पहली शर्त यही है जो संविधान में ही प्रदत्त है ।

स्वतंत्रता के पचास वर्षों के पूर्व आजादी की लड़ाई में क्रांति और अहिंसा दोनों के रास्तों पर महिलाओं ने पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर अपना योगदान दिया। आजाद हिंद सेना की महिलाएँ और कैप्टन लक्ष्मी हो या दुर्गा भाभी, कस्तूरबा गांधी हो या कमला नेहरु, ये नाम उसी आदर से लिये जाते हैं जैसे अन्य स्वतंत्रता सेनानियों के।

इन्हीं वर्षों में विवेकानन्द, दयानंद सरस्वती, सुब्रामण्यम भारती, सावित्रीबाई फुले ओर महात्मा गांधी जैसे विचारकों ने समाज में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए कई प्रयास किये । इन दोनों कारणों के फलस्वरूप संविधान के रचनाकारों ने भेदभाव रहित लोकतंत्र की रचना की जिसमें समानता के ध्येय को सर्वोपरि रखा गया और महिलाओं को आगे बढ़ाने और उन्हें मौका देने के लिये विशेष रूपसे प्रावधान किये गये।

स्वतंत्रता के पश्चात् अगले चरण में पंचवर्षिक योजनाओं में 'महिला विकास' की दृष्टि से कई कार्यक्रम बनाये गये । निर्णय -प्रक्रिया में महिलाओं का भी सहभाग होना आवश्यक माना गया। इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है कि सन् १९६० में बने महाराष्ट्र के जिला परिषद अधिनियम और सहकारिता अधिनियम दोनों में यह प्रावधान है कि यदि चुनावों में कोई महिला प्रतिनिधी जीत कर न आये तो कम से कम दो महिला प्रतिनिधियों को नामजद करके लिया जायगा । राजनैतिक क्षेत्र में महिलाओं के सहभाग पर देशव्यापी निर्णय तब हुआ जब अस्सी के दशक में संविधान संशोधन के माध्यम से ग्रामपंचायतों में चुनाव प्रक्रिया पुनर्स्थापित करते हुए उसमें महिलाओं के लिये तैंतिस प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था हुई । 'महिला सशक्तिकरण '' शब्द का प्रयोग सरकारी तंत्र में हाल में ही आया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकारी योजनाओं की सोच पहले 'महिला-विकास' फिर 'महिला सहभाग' की राह चलकर अब 'महिला सशक्तिकरण' तक आ पहुंची है । यह हमारी मानसिकता के परिपक्व होने का एक उदाहरण माना जा सकता है।

पिछले पचास वर्षों में व्यक्तिगत रूप से कई महिलाओं ने अपनी क्षमता का परिचय देते हुए कीर्ति और सफलता हांसिल की है । हम ऐसे कई नाम गिना सकते हैं, यथा लता मंगेशकर, आशा भोंसले, मदर टेरेसा, अमृता प्रीतम,महाश्वेता देवी, अन्ना मल्होत्रा, रमा देवी, निर्मला बुच, सुजाता मनोहर, पी टी ऊषा, बच्छेंद्री पाल, सुब्बालक्ष्मी, सोनाल मानसिंग, रोमिला थापर, किरण बेदी, कल्पना चावला इत्यादि। यहां तक की देश के सर्वोच्च शासक के रूप में इंदिरा गांधी भी अपनी प्रतिभा और प्रभाव दिखा चुकी हैं। राजनीति में नंदिनी सत्पथी, शशिकला बांदोडकर, जयललिता आदि कई महिलाओंने प्रभाव दिखाया।

फिर भी कुछ क्षेत्र ऐसे रह जाते हैं जिसमें महिलाओं ने अब तक कोई कीर्तिमान स्थापित नहीं किया है । जैसे बैंकिग, उद्योग, व्यापार, सेनानी, जासूसी, सामुद्रिकी, विज्ञान एवं तकनीकी, इत्यादि। कोई महिला दार्शनिक के रूप में कीर्ति नहीं ले पाई है । जहां टीम वर्क हो, रणनीति बनानी हो, अपनी चतुराई से शत्रु पर विजय पानी हो, वहाँ अब भी महिला को अक्षम माना जाता है। ।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ क्या है ? हम कब कहेंगे कि महिला सबल हो गई? मेरे विचार से इस प्रश्न की परख इस बात से की जानी चाहिये कि क्या नारी भयमुक्त होकर, सम्मान को खोये बगैर, जिस लक्ष्य को पाना चाहती हो, उसका प्रयास कर सकती है और अपने गंतव्य तक पहुँच सकती है । उसे संचार का हक हो, सुरक्षितता मिले, आर्थिक निर्भरता समाप्त करने के पर्याप्त साधन उपलब्ध हों, उसकी इच्छा-अनिच्छा एवम् सुझावों की परिवार, समाज व देश के स्तर पर कदर हो, उसे अपनी योग्यता बढाने का अवसर मिले, धन-संपत्ति में हक मिले, रोज रोज के एकरस, उबाऊ तथा कमर-तोड कामों से राहत मिले, देश की प्रगति तथा देख गौरव बढाने में उसका पूरा सहयोग हो।संक्षेप में यह कहें कि समाज के रथ के दो पहियों में एक पहिया अगर नारी है, तो उसका भी उतना ही सबल और सुयोग्य होना आवश्यक है जितना पुरूष का। यही सबलता और सुयोग्यता महिला सशक्तिकरण की असली पहचान होगी।

सशक्तिकरण एक मानसिक अवस्था है जो कुछ विशेष आन्तरिक कुशलताओं और सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर है। इनमें प्रमुख हैं ----

१) निर्भयता जिसके लिये समाज में कानून और सुरक्षा का होना आवश्यक है।
२) रोजाना के नीरस, उबाऊ और कमरतोड कामोंसे मुक्ति।
३) आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं उत्पादन क्षमता।
४) देशाटन की सुविधा तथा गतिशील वाहनों पर काबू।
५) निर्णय करने का अधिकार।
६) सत्ता एवम् संपत्ति में पुरुषों के साथ बराबरी के साझे का हक।
७) ऐसी समुचित शिक्षा जो औरत को उपरोक्त बातों के लिये तैयार करे।

सबसे पहले हम महिला पर होनेवाले अत्याचारों का विश्लेशण करेंगे। पिछले पचास वर्षों में जो सबसे प्रमुख समस्या तेजी से उभरी है वह है औरत जाति के जन्म लेने के अधिकार का ही हनन। पहले नवजात स्त्री शिशु को मार देने की कुप्रथा से चली यह समस्या अब गर्भ-लिंग परीक्षा और स्त्री-भ्रूण-गर्भपात से भी आगे बढकर संतानोत्पत्ति के लिये "पुरूष-लिंग के चुनाव और निर्धारण" तक पहुँच गई है। इसकी पर्याप्त झलक सन् 2001 के जनगणना के आँकडे देते हैं जो बताते हैं कि ० - ६ आयु की वयस् में प्रति हजार पुरूष- शिशुओं की तुलना में स्त्री - शिशु संख्या पिछले बीस वर्षों में लगातार घटती हुई .962 से 927 पर आ पहुँची है।

जन्म लेने के हक के मुद्दे के साथ साथ कुछ अन्य मुद्दे भी जुडे हैं जिनमें सबसे पहला मुद्दा आता है दहेज हत्याओं का और दहेज अत्याचारों का। इनकी संख्या और निर्ममता के जो विवरण सामने आ रहे हैं, वे चिंताजनक हैं। एक वर्ष में पुलिस करीब 5000 दहेज हत्याएँ दर्ज करती है और करीब 31000 दहेज अत्याचार । इन्हीं के साथ - साथ परित्यक्ता महिलाओं की, आपसी सहमति से तलाक लेने की और पत्नी के होते हुए दूसरी शादी करने की घटनाओं में वद्धि हो रही है। सहमति तलाक के अधिकांश मामलों में औरत अपने ऊपर हो चुके अत्याचारवश मजबूरी में यह फैसला लेती है। परित्यक्ता महिलाओं के गुजारा भत्ते के केसेस भी लगातार बढ रहे हैं और अनुमान है कि ऐसे पांच लाख से भी अधिक मुद्दे न्यायालय में प्रलंबित हैं।

"परिवार" की संकल्पना भारतीय समाज का एक परिचायक और प्रातिनिधिक मानदण्ड रहा है। उपरोक्त आंकडे उसीके अस्तित्व पर धीरे - धीरे प्रश्नचिन्ह लगा रहे हैं। यदि अपने घर में ही औरत असुरक्षित, भयग्रस्त या तनाव-ग्रस्त है तो उसके सशक्तिकरण की बात बहुत दूर रह जाती है।

घर के बाहर महिला सुरक्षितता का प्रश्न भी चिंताजनक बन गया है। देश भर में एक वर्ष में करीब 12000 बलात्कार की घटनाओं के साथ साथ अगुवा करने की 13000,अन्य यौन प्रताडना की 26000, और छेडछाड की 11000 घटनाएं दर्ज हो रही हैं। एक लाख के करीब दर्ज होनेवाले इन अपराधों की बाबत पुलिस का मानना है कि विभिन्न सामाजिक और आर्थिक कारणों के चलते महिलाओं के विरूद्ध घटने वाले सभी अपराधों में से केवल दस से पचीस प्रतिशत ही दर्ज हो पाते हैं। जो दर्ज हो भी जाते हैं, उनकी छानबीन, अदालतों में पेश होना और फैसले की सुनवाई की पूरी प्रक्रिया में जानलेवा विलम्ब भी है और इतनी त्रासदी है कि वही अपने आपमें एक अत्याचार बन जाता है। अपराध की शिकार महिला इन त्रासदियों को झेल भी ले तो भी केवल 15 प्रतिशत अपराधियों को ही सजा मिल पाती है, और महिला

को न्यायसे वंचित ही रहना पडता है।

व्यक्तिगत अपराधों के अलावा बडे पैमाने पर महिलाएँ सामूहिक और संगठित अपराधों की भी शिकार बन रही हैं। सामूहिक बलात्कार छोटी बच्चियों का बलात्कार या यौन शोषण, उन्हें वेश्यावृत्ति में लगाना, संगठित गिरोहों द्वारा स्त्रियों को देह व्यापार के लिये खरीदा बेचा जाना, पंचतारांकित माहौल में कॉर्ल-गर्ल के बढते अपराध, इनके साथ साथ ही जलगांव वासनाकांड जैसी घटनाएँ भी हो रही हैं जिसमें छोटी छोटी लालचों में फंसाकर युवतियों की अनुचित तस्वीरें खींचकर उसके माध्यम से उन्हें ब्लॅकमेल कर यौन-शोषण किया गया।

ग्रामीण महिला की विडम्बना और अधिक है। गाँवकी गुटबाजी में एक समूह द्वारा दूसरे समूह को "सजा देने के लिये" उक्त समूह की महिलाओं पर सामूहिक अत्याचार या किसी महिला के "मनोबल को तोडने के लिये" उस पर सामूहिक अत्याचार की घटनाएँ बढी हैं।

यदि सशक्तिकरण की पहली कसौटी है निर्भयता, तो इसे पाने के लिये यह आग्रह करना होगा कि हमारी पुलिस और न्याय प्रणाली कार्यक्षम बने, औरतों के प्रति संवेदनाशील बने, यौन अपराधों के लिये कडी सजा हो और आज की ढीली दंड प्रक्रिया को बदला जाए। एक नई व्यवस्था का निर्माण करना पडेगा ताकि न्याय प्रक्रिया की तमाम अकार्यक्षमताएँ एवम् विलम्ब जनता के सम्मुख लाये जायें, साथ ही अपराध के छानबीन पर से पुलिसका और न्यायिक प्रक्रिया पर से अदालतों का एकाधिकार समाप्त कर इसे गतिवान बनाया जाये। ऐसी कौनसी योजनाएँ हमारे पास हैं और उन्हें किस प्रकार जनता के परिशीलन के हेतु रक्खा जाये?

पारिवारिक और बाहरी सुरक्षा के बाद प्रश्न उठता है रोटी जुटाने का । आज की महिला अपनी रोटी कैसे जुटा लेती है ? काम करके। लेकिन कैसा काम, कौन सा काम, महिलाएँ उसे किस प्रकार करती हैं और उस काम का लेखा जोखा कैसे रख्खा जाता है ? यहाँ हमें चारों मुद्दों को देखना पडेगा।

स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद आज भी हमारी कामकाजी जनसंख्या में से सत्तर प्रतिशत महिलाएँ अकुशल कामों में लगी हैं और उन्हें मजदूरी भी उसी हिसाब से दी जाती है। उदाहरण स्वरूप इमारत बनाने के काममें लगी महिलाएँ सर पर बोझा ढोते हुए दिनभर में दसियों बार सीढियों से चढ उतरकर जो थकानेवाला मेहनतका काम करती है, वह काम "अकुशल" की श्रेणी में है। लेकिन जिस आदमी को यदा कदा सिमेंट का मिश्रण बनाना है या जो बेलदार है या आनेवाले सामान का हिसाब रख रहा है उनका काम "कुशल" माना जाता है और उन्हें अधिक मजदूरी मिलती है। यही विश्लेषण हर क्षेत्र में लागू होता है - कि औरत की कमरतोड , थका देने वाली मेहनत का दर्जा है "अकुशल काम" का और उसकी मजदूरी भी वैसी ही कम है।

दूसरी बात यह कि कई क्षेत्रों में औरतके काम की गिनती ही नहीं है और उसके लिये उसे कोई मजदूर' नहीं मिलने वाली - उदाहरण स्वरूप - घरेलू इंधन के लिये लकडी जुटाने का काम, पानी ढोकर लाने का काम, रसोई पकाने और घर की साफसफाई का काम, बच्चोंकी देखभाल, बाजार से सौदा लाना इत्यादि। हर औरत औसतन छह घंटे इन कामों में लगाती है जिनकी न कोई मजदूरी है और न गिनती, फिर भी इन कामों में कमरतोड मेहनत है, नीरस ऊबाऊपन है और इनसे छुटकारे का कोई रास्ता घरेलू औरत के पास नहीं है। इन सारे कामों के लिये उसे कोई सम्मान नहीं और बिना सम्मान के कैसा सशक्तिकरण ?

हमारे समाज में पुरूष को ये सारे काम नहीं करने पडते। यदि कोई पुरूष इन कामों में साझेदारी करता है तो उसे स्त्रैण कहते हुए उसका असम्मान किया जाता है। जब तक इन कामों पर और उसे करनेवाली "औरत जात" पर अनुल्लेख और असम्मान का ठप्पा पडा है, और जब तक उन कामों से मुक्ति का कोई रास्ता महिला को उपलब्ध नही है , तब तक महिला सशक्तिकरण दूर ही रहेगा।

इन नितान्त "घरेलू" कामों के लिये महिला को सम्मान मिले, यदा-कदा छुट्टी भी मिले और जब छुट्टी न मिले तब उसके काम में पुरूष सदस्यों की सहभागिता और साझेदारी हो, ऐसा वातावारण बनाने का काम सरकार नहीं कर

सकती। वह करना होगा समाज धुरिणों को, चिन्तकों को, लेखकों को, स्वंयसेवी संस्थाओं को, और प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति को। हमारी तमाम धार्मिक संस्थाएँ भी इस जिम्मेदारी से मुँह नहीं मोड सकतीं।

इस सम्मान को प्रस्थापित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम यह होगा कि इन महिलाओं की प्रवीणता को विभिन्न सामाजिक स्तरों पर पहचाना जाय, आँका जाय और सम्मानित भी किया जाय। उदाहरणस्वरूप यदि कोई बच्ची माँ बाप की अनुपस्थिती में छोटे भाई बहनों की देखभाल के लिये स्कूल छोडकर बैठी हो, तो शिशु घरों की देखभाल के लिये या नर्सिंग कोर्स के लिये उसे अधिक पात्र माना जाना चाहिये, जबकि होता है उसके ठीक विपरीत ।

सशक्तिकरण में शिक्षा का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है । कहा जाता है - सा विद्या या विमुक्तये । इसी कसौटी पर आज की शिक्षा प्रणाली पुनर्गठित करने की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है । नई प्रणाली को हुनर शिक्षा और आर्थिक उत्पादनशीलता के लिये अभिमुख होना पड़ेगा । वह शिक्षा ऐसी हो जिसमें चिरित्र निर्माण है - जहां ईमानदारी, कार्यकुशलता, न्यायपरायणता और देशप्रेम जेसे मूल्यों को तेजस्वी व प्रखर बनाया जाय । वह ज्ञान की लालसा तथा देशभ्रमण की उत्सुकता उत्पन्न करें । वह महिला में जिज्ञासा भर दे । ऐसी शिक्षा सहजता से उपलब्ध हो, यह आज की प्रमुख आवश्यकता है ।

सरकारी योजनाएँ इस उद्देश्य के लिये कम पड रहीं हैं कि कि महिलाओं के पास हुनर के रूप में आमदनी का जरिया हो। किसी भी शैक्षिक संस्था में कम से कम आठ वर्ष बिताये बगैर कोई हुनर शिक्षा देने की व्यवस्था नहीं है। जिन महिलाओं ने परंपरागत ढंग से कोई हुनर सीखा हो तो उसे आगे बढाने की कोई शिक्षा प्रणाली आजकी सरकारी योजनाओं में नही है। हुनर सीखी महिला जब अपने हुनर को व्यावसायिक रूप में ढालकर रोजी - रोटी का साधन बनाना चाहती है, तो उसे अन्य कई मुद्दों पर ट्रेनिंग और सहायता की आवश्यकता है, मसलन कर्जा मिलने की व्यवस्था, मार्केटिंग की प्रशिक्षा , वित्तीय मॅनेजमेंट, क्वालिटी कण्ट्रोल, इन्वेंटरी कंट्रोल, प्राईसिंग आदि की प्रशिक्षा इत्यादि की जरूरत होती है। ऐसे शॉर्ट कोर्सेस अभी तक सरकारी योजनाओं में कहीं भी नहीं है जो महिला व्यवसायी की आवश्यकता के अनुरूप लचीले, सुलभ और कम खर्चे पर उपलब्ध हों।

शिक्षा और हुनर के अलावा एक अंतर्मुखी प्रेरणा भी सशक्तिकरण के लिये आवश्यक हे । यहां एक व्यक्गित अनुभव बयान करना उचित होगा । शासकीय नौकरी के दौरान महाराष्ट्र के दो जिले सांगली और कोल्हापूर में देवदासियसों के आर्थक पुनर्वास की योजना हमने कार्यालय के माध्यम से चलाई । इसके अंतर्गत व्यवसाय प्रशिक्षण के साथ दो कर्ज उपलब्ध कराकर उन्हें उत्पादन के लिये यप्रशिक्षित किया गया। (संदर्भ-मेहेंदले,ए १९९१) अन्य सारे प्रशिक्षण के बावजूद, हमें सफलता तभी मिली जब हमने एक खास 'व्यक्तिमत्व विकास' प्रशिक्षण भी चलाया जिसमें हुनर सीखने पर बल दिया गया -

(1) समूह- गान
(2) कवायत करते हुए राष्ट्रीय झंडे को सलामी देना
(3) साइकिल चलाना तथा
(4) फोटोग्राफी ।

इनमें से भी साइकिल चलाकर गति पर काबू पाने के आत्मविश्वास का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा । एक अन्य उदाहरण है जब एक महिला-ग्रुप को मिस्त्रि का काम सिखाया जा रहा था । तीन महिने के प्रशिक्षण का ढांचा बदला जाय । मिस्त्रीा का काम करने के साथ-साथ यह भी सिखाया गया कि ग्राम पंचायत और तालुका पंचायत के कामों के ठेके के लिये टेंडर किस प्रकार भरने हैं, मजदूर कैसे लगाने हैं,उनके काम की परख और माप कैसे करते हैं, मजदूरी का हिसाब कैसे करते हैं इत्यादि । अब यह महिला ग्रुप कन्स्ट्रक्शन ठेकेदार बना हुआ है और अच्दा काम कर रहा है । पंचायती चुनावों के बाद कई महिला पंचों और सरपंचों ने अपने गांवा में खासकर स्कूल छोड़ने वाली बच्चियों की पढ़ाई, या जल-संधारण, तथा अन्य ग्रामीण-विकास कार्यक्रमों में अच्छे काम किये हैं ।

हुनर अर्थात् व्यवसाय शिक्षा को देशव्यापी बनाने के लिये दूरदर्शन के माध्यम का बखूबी उपयोग किया जा सकता है क्यों कि पिछले पचीस वर्षों में, रंगीन दूरदर्शन का जाल ग्रामीण क्षेत्रों तक फैल गया है । लेकिन अफसोस कि

हमारी योजनाओंकी प्राथमिकता में दूरदर्शन का सही उपयोग यही माना जाता है कि हुनर और व्यवसाय प्रशिक्षण को देश के सुदूर कोने तक पहुँचा कर महिलाओं को लाभान्वित करने की बजाय इसमे मनोरंजन हो जिससे सरकारी तिजोरी के किये आय इकट्ठी की जाये । इस प्राथमिकता को तत्काल बदल कर व्यवसाय शिक्षा के प्रसार में दूरदर्शन का उपयोग करना होगा अन्यथा जगह जगह प्रशिक्षण केंद्र नहीं खोले जा सकते क्यों कि यह अत्यधिक खर्चिला तथा समय लगानेवाला उपाय है।

हुनर शिक्षा के साथ-साथ हमें शिक्षा के सार्वत्रिकरण की योजना को और अधिक गति देनी पड़ेगी । देश की हर महिला को कम से कम साक्षरता और प्राथमिक शिक्षा मिलना अत्यावश्यक है । सन् २००१ की जनगणना के आंकड़ों से हम पाते हैं कि साक्षर महिलाओं की प्रतिशत ४७% तक बढ़ी है लेकिन अधिक कार्यक्षमता की आवश्यकता है। तालुका और जिला स्तर के आंकड़ों की जांच से पाया गया है कि जहां महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत अधिक है, वहां जनसंख्या वृद्धि की दर भी कम है और महिलाओं में स्वास्थ्य संबंधी चेतना अधिक है । यही बात कानूनी जागरूकता, से लेकर अन्य कई मुद्दों पर लागू पड़ती है । अत एवं प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में अधिक तेजी लाना आवश्यक है।

तीन अन्य मुद्दों की चर्चा बिना सशक्तिकरण की चर्चा समाप्त नहीं हो सकती । ये मुद्दे हैं सत्ता और संपत्ति में भागीदारी के। हमारे लोकतंत्र में महिला सशक्तिकरण की पहली नींव उसी दिन पड़ गई जिस दिन हर वयस्क महिला को पुरूषों की बराबरी में मतदान करने का और चुनाव में ख़डे होनेका हक मिला। आजादी की लडाई में उनके योगदान के फलस्वरूप पहले चुनाव में कई महिलाएँ जीतीं। लेकिन धीरे-धीरे चुनाव लड़कर जीतने वाली महिलाओं की संख्या कम होती गई । दूसरी ओर सत्ता के विकेद्रीकरण की आवश्यकता भी बढ़ गई । अतएवं संविधान में सशोधन करके ग्राम पंचायत की जो नई रूपरेखा बनाई गई उसमें स्त्रियों के लिये तीस प्रतिशत आरक्षण रखा गया । इसके परिणामस्वरूप जागृती, और सशक्तिकरण की एक नई लहर उठी है । नव निर्वाचित कई महिला पंचों और सरपंचों ने पिछले बारह वर्षों में स्त्री शिक्षा, ग्रामीण विकास, शराब बंदी ओर जल संधारण के क्षेत्र में अच्छा काम किया है और सत्ता के भागीदारी के लिये स्त्री वर्ग की पात्रता को सिद्ध कर दिया है । दूसरी तरफ प्रशासन, शिक्षा, वैज्ञानिकी, प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में भी महिलाओं ने अच्छा काम किया है लेकिन उनकी संख्या अभी भी अत्यंत कम है।

महिला आरक्षण पर कईयोंने प्रश्न भी उठाये हैं । न केवल चुनावी प्रक्रिया में बल्कि शिक्षा संस्थाओं में, और सरकारी नौकरियों में भी महिलाओं के लिये आरक्षण की व्यवस्था की गई है ।उनके लिये यही कहना पर्याप्त होगा कि संविधान में भी इसकी आवश्यकता महसूस करके इसका प्रावधान किया गया था। इसे संविधान में 'पौज़िटिव्ह डिस्क्रिमिनेशन इन फेवर ऑफ वूमेन' कहा गया और इसे समुचित भी ठहराया गया है उसका अनुपालन अब धीरे-धीरे हो रहा है। फिर भी सशक्तिकरण का अंतिम चरण तभी संपन्न माना जा सकता है जब आरक्षण की कोई आवश्यकता न रहे । आज नई पीढ़ी की कई छात्राएं मानती हैं कि वे आरक्षण के द्वारा नहीं बल्कि अपने बलबूते पर आगे जाना पसंद करेंगी । यह एक अच्छा संकेत है। सही सशक्तिकरण का एक बीज उगा है और इस पौधे को सींच कर बड़ा करना होगा ।

दूसरा प्रश्न है अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की महिला का । इन पर पिछड़े पन की भी मार पड़ती है और औरत होने की भी । सारा दिन अकुशल, मेहनती काम करने के बाद और कम मजदूरी पाने के बाद घर लौटी औरत को अपने पति की शराब की जरूरतों के लिये मारपीट सहनी पड़ती है । कभी ऊंची जात वालोंके सामूहिक क्रोध का शिकार महिलाको होना पड़ता है । दो आदिवासी जनजातियों की टोलियाँ आपस में युद्ध करती हैं तब भी महिलाएं या तो स्वयं अत्याचार की शिकार बनती हैं या फिर विधवा की जिन्दगी बिताती हैं । प्राकृतिक आपदओं के कारण विस्थापित होने वाली महिलाओं की त्रासदी भी पुरूष विस्थापितों की अपेक्षा कई गुनी अधिक है ।

अनुसूचित जनजातियों और खास कर उनके महिला वर्ग के सशक्तिकरण का असली जरिया है जंगल । लेकिन एक गलत धारणा यह फैली हुई है कि आदिवासी ही जंगलों के विनाशक हैं ओर दूसरी गलत धारणा यह फैली हुई है आदिवासी समाज के विकास की दिशा केवल वही हो सकती है जो बाकी समाज के लिये अपनाई गई है, भले ही इसके लिये उन्हें अपने नैतिक मूल्य, अपनी जीवन शैली व सामाजिक मान्यताओंको छोडना पडता हो। हम भूलते हैं कि सदियों

से आदिवासी जनजातियों तथा अनुसूचित जातियोंने अपने पास कई ज्ञानभंडार और कलाएँ सुरक्षित रख्खी हैं जिन्हें केंद्र बिन्दू पर रख कर उनके विकास के लिये कुछ पर्यायी पद्धतियाँ और योजनाएँ बन सकती हैं। हमें शीघ्रता से ऐसी योजनाएँ बनानी और कार्यान्वित करनी पडेंगी।

आजकल चर्चा में एक शंका यह है कि क्या महिला सशक्तिकरण के कारण हमारे परिवार टूट रहे हैं । मैं मानती हूं कि परिवार संस्था ही बढ़ कर समाज के रूप में विकसित होती है । लेकिन परिवार संस्था तभी तक मजबूत रहेगी जब तक उसके सारे घटकों में समान्ता और साझेदारी होगी - इसके लिये परिवार के सारे सुख दुख, भूमिकाए, जिम्मेदारियां, आवश्यक किन्तु उबाऊ, निर्णय का अधिकारी इत्यादि आपस में बांटने होंगे । इसके लिये आवश्यक है कि परिवार के घटक सदस्य एक दूसरे का ख्याल रखें , उनका हाथ बटाएं, उनके अच्छे गुणों के संबंध में और सम्मान में और कमियों को पूरा करते हुए और यह सारा समानता के आधार पर हो ।

तीसरा महत्वपूर्ण प्रश्न है संपत्ति में साझेदारी का । उत्पादन के क्षेत्र में महिलाओं का पर्याप्त योगदान होने के बाद भी महिलाओं के लिये संपत्ति में साझेदारी नहीं के बराबर है । इस दिशा में कानूनी सुधारों के द्वारा और अन्य प्रशासकीय उपायों द्वारा संपत्ति में महिला को अधिकार दिया जा रहा है। दुर्भाग्यवश इन प्रयासों का विरोध भी हो रहा है।

जैसे-जैसे महिला चेतना बढ़ेगी और महिलाएँ अपने हक के लिये आग्रह करेंगी, शुरूआत में उन पर प्रहार भी होते रहेंगे । सशक्तिकरण के रास्ते में दूसरी रूकावट पुरूष मानसिकता की होगी जिसके अंतर्गत कई क्षेत्र केवल "पुरुषोंके" माने जाते हैं और समझा जाता है कि उनमें महिलाओं को दाखिल होने का अधिकार नहीं है । महिलाओं पर बढते अत्याचारों का एक कारण यह है कि जिस गति से महिला चेतना प्रकट और मुखर हो रही है और महिलाएँ अपने भागदेय पर अधिकार माँग रही हैं, उतनी गति से पुरूषों की संवेदना जागृत नहीं हो पा रही है, जिससे संघर्ष हो रहा है।

भविष्यकाल में विकास की दिशा तय करने वाले दो महत्वपूर्ण विषय होंगे इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी और बायो-टेक्नोलॉजी । दोनों ही तकनीकियाँ ऐसी हैं कि उनका इस्तेमाल करने वाले की इच्छा के अनुरूप वे चाहें तो केंद्रीयकरण को बढ़ावा मिल सकता है, ओर चाहें तो विकेंद्रीकरण को भी बढ़ावा मिल सकता है । दोनों तकनीकियाँ ऐसी भी हैं जिनमें महिलाओं के लिये अपनी कारगुजारी और क्षमता दिखाने के अच्छे अवसर उपलब्ध होंगे । प्रश्न यह होगा कि महिलाओं को इन तकनीकों के अग्रभाग में लाना होगा । जिस देश की आधी महिलाएं अनपढ़ हैं और बाकी में से आधी महिलाओं को प्राथमिक शिक्षा पूरी होने से पहले ही स्कूल छोड़ देना पड़ता हो वहां यह चुनौती होगी कि महिलाको इन तकनीकों के अग्रक्रम पर कैसे पहुँचाया जाए। आइये, हम उम्मीद करें कि अपने लोकतंत्र एवम् समानता के हक का आधार लेते हुए हम इस दिशा में अग्रसर होंगे।

राष्ट्रीय महिला आयोग के वार्षिक कार्यक्रम मार्च १९९९ में दिया भाषण